# निबन्ध परम्परा और डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

**डॉ. राखी उपाध्याय,**

*एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,*

*डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून, उत्तराखण्ड*

निबन्ध गद्य की एक प्रतिष्ठित तथा महत्वपूर्ण विधा है। प्रारम्भ से ही निबन्ध का अर्थ बाँधने से लिया जाता है। नि+बन्ध (बाँधना) + धन (संग्रह), प्रबन्ध भी इसी का सामानार्थी है। प्र+बंध+अन् = बाँधना, सन्दर्भ या गन्थ रचना। संस्कृत साहित्य में दोनों का ही अर्थ एक है। वहाँ निबन्ध और प्रबन्ध का बराबर समानार्थी प्रयोग है।

प्राचीन संस्कृत परम्परा के निबन्ध केवल बौद्धिक अभिव्यक्ति का माध्यम था। दार्शनिक विश्लेषणों को निबन्ध का रूप दिया जाता था। आज के निबन्ध का वास्तविक अर्थ एवं स्वरूप परिवर्तित हो गया है। तार्किकता का स्थान नहीं रहा। तार्किकता का स्थान सहृदयता ने ले लिया। उसमें व्यक्तित्व, भावों–विचारों तथा अनुभूतियों का सहज–स्वाभाविक अंकन रहता है। विचारों का खण्डन–मण्डन नहीं। अतएव वर्तमान निबन्ध को अतीत की स्थापित निबन्धों की कसौटी पर कसना अनुचित होगा।

निबन्धकार स्वछन्दता पूर्वक जिस किसी भी विषय पर अपने आन्तरिक विचार बिना किसी आडम्बर के व्यक्त करता है तो उसमें आत्मीयता, सरलता, अनुभूति, प्रवणता की प्रधानता रहती है। निबन्धों में लेखक का स्वच्छन्द एवं प्रत्यक्ष प्रस्तुतीकरण होता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है पाठकों से सानिध्य एवं आत्मीयता स्थापित करना। निबन्धकार अपने उद्भूत विचारों तथा भावों को बिना दुराव–छिपाव के नि:संकोच पाठक के समक्ष रखता है। निबन्ध लेखक की विचार प्रबलता, अनुभवशीलता और प्रौढ़ता का परिचय देता है, परन्तु यह एक विशेष मनोदशा (मूड) में लिखा जाता है। "निबन्ध में लेखक की विशेष मानसिक चेतनागत भावात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है। उसमें एक निजीपन होता है। जिसमें लेखक सहज की पाठक के साथ निकटता स्थापित कर लेता है। निबन्ध आत्मानुभूतियों का लेखक और पाठक के साथ परस्पर संचार करने का प्रयास है। निबन्ध में लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। अपने उस व्यक्तित्व के आधार पर लेखक अपने निबन्ध में अपने कथन में सबलता, सशक्त आग्रह और प्रवाहशीलता उत्पन्न कर सकता है।"[1]

निबन्ध लेखक मत का प्रतिपादन नहीं करता, सिद्धान्त स्थिर नहीं करता, वह मनोनीत विषय को अपने व्यक्तित्व के रस में पगा कर प्रकट करता है। वह विषय का अध्ययन कर नहीं लिखता।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निबन्ध के विषय में कहान है कि– "आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अथवा व्यक्तिगत विशेषता हो।"[2]

निबन्ध प्राण और शरीर दोनों ही दृष्टि से शुद्ध भारतीय विधा है निबन्ध का कथ्य और शैली–शिल्प दोनों ही भारतीय है। गद्य शैली की विकासात्मक परम्परा राजस्थानी, गद्य, ब्रजभाषा, उर्दू, हिन्दुस्तानी अंग्रेजी प्रभाव, खड़ी बोली आदि की अनेक सीढियाँ एवं निबन्ध स्वरूपें के अनेक सोपान तय करने के उपरान्त ही आज इस रूप में प्रतिष्ठित हो सकीं उसकी आध्यात्मिकता, खण्डन–मण्डन पूर्ण तार्किकता, व्यंग्य–विनोद पूर्ण सामाजिकता, भाषा एवं व्याकरण के प्रति अति

जागरूकता जहाँ वर्तमान विश्व के बदलते प्रतिमानों एवं ज्ञान की विविध व्यापक दिशाओं की अनेक प्रवृत्तियों एवं दृष्टिकोणों में बदल गई है। वहीं वह लेखक की वैचारिकता और अनुभूतिपरक वैयक्तिता के अन्तर्मुखी पक्ष से अधिक प्रभावित तथा समन्वित होकर नया रूप पाने में समर्थ हुई है।

हिंदी में निबन्ध लेखन की परम्परा भारतेन्दु के समय से ही मानी जानी चाहिए। तब से लेकर अद्यतन निबन्ध लेखन अबाध रूप से चला आ रहा है।

भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखकों ने सामान्य तथा गंभीर दोनों प्रकार के विषयों पर निबन्ध लिखे परन्तु तत्कालीन निबन्धों की कोई मान्य शैली न थी, इसलिए निबन्ध लेखन शैली के सन्दर्भ में अनेक वैयक्तिक प्रयोग किए गए। यह नवजागरण काल था। जीवन से संबंधित अनेक प्रश्न निबन्धों के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत हुए। भारतेन्दु के अतिरिक्त पं. प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', बालमुकुन्द गुप्त, राधा चरण गोस्वामी आदि निबन्धकार इस युग की ही देन है।

द्विवेदी के युग के निबन्धों के जीवन के प्रति नैतिकता का दृष्टिकोण प्रधान रहा है। इस कारण उनमें गम्भीर विवेचन का प्राधान्य तथा भारतेन्दु युगीन विनोद का अभाव रहा। ये निबन्ध राष्ट्रीय जागृति, मानवता, विश्व–प्रेम, सामाजिक एकता, सांस्कृतिक पुनुरुत्थान तथा भाषा–परिष्कार की भावनाओं से ओत–प्रोत रहे। अपनी वैचारिक गम्भीरता के कारण इस युग के निबन्ध शिक्षित वर्ग की ही वस्तु बनकर रह गए।

आचार्य शुक्ल ने भारतीय और पाश्चात्य निबन्ध शैलियों का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत करके द्विवेदी युगीन शास्त्रीय गद्य–शैली को एक नवीन रूप प्रदान किया। इस युग में निबन्ध–लेखन का अत्यधिक विकास एवं उन्नयन हुआ। विषय–विस्तार, मौलिक चिन्तन, शैली–परिमार्जन आदि सभी दृष्टियों से इस युग के निबन्ध उच्च कोटि के हैं। इसी युग में निबन्ध शैली में प्रौढ़ता आई तथा भाषा में एक नई अभिव्यंजना पद्धति का उदय हुआ। इस युग के निबन्धों ने हिंदी गद्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। शुक्ल युग के प्रमुख निबन्धकारों में बाबू गुलाब राय, प्रेमचन्द, श्याम सुन्दर दास, डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, माखन लाल चतुर्वेदी, जयशंकर प्रसाद, निराला, पन्त, नन्ददुलारे बाजपेयी वियोगीहरि, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा राहुल सांकृत्यायन आदि का योगदान उच्चकोटि के विचारात्मक निबन्ध प्रस्तुत करने में रहा है।

विषय के विश्लेषण और पर्यावलोकन की दृष्टि से इन निबन्धकारों में वैज्ञानिक की सूक्ष्म दृष्टि, साहित्य की मौलिकता तथा समीक्षाक की सतर्कता के दर्शन परिलक्षित होते हैं। इनके घनीभूत वाक्यों की ध्वनि, मार्मिकता तथा प्रभावोत्पादकता की सृष्टि करती है। इनके निबन्ध 'शैली ही व्यक्ति' वाली लोकोक्ति के प्रतीक बन गए।

इन सब निबन्धकारों के मध्य चर्चित हस्ताक्षर डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के निबन्धों पर यदि दृष्टिपात करें तो यह ज्ञात होता कि उनके निबन्धों में उथलापन नहीं है जिस भी विषय पर उनकी लेखनी चली उसको गहराई से विश्लेषण कर एक मत स्थापित करने की चेष्टा की। उनको ऐसी दूर–दृष्टि प्राप्त थी जो रहस्य के पर्दों के पार देखने में समर्थ और सक्षम थी।

शोध और अनुसंधान की प्रधानता के कारण उनके निबन्ध विशिष्टता की श्रेणी में आते हैं। मूल तत्व को खोजकर सत्य और परिष्कृत रूप में सबके सामने उपस्थित कर देने वाले उनके निबन्धों में भ्रान्त धारणाओं का परिष्कार करने की क्षमता है।

डॉ. बड़थ्वाल ने हिंदी में नाथ और सन्त साहित्य में अन्वेषण और शोध परक दृष्टि अपनाई और उन्हें हिंदी में प्रथम डी.लिट्. की उपाधि

"निर्गुण स्कूल ऑफ पोयट्री" शोध–प्रबन्ध पर प्रदान की गई। प्रयाग विश्वविद्यालय के दर्शन शास्त्र के तत्कालीन प्रोफेसर रानाडे ने इस शोध–प्रबन्ध के विषय में अपनी सहमति कुछ इस प्रकार व्यक्त की "यह केवल हिंदी साहित्य की विवेचना के लिए ही नहीं अपितु रहस्यवाद की दार्शनिक व्याख्यों के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण देन है।"[3]

"डॉ. बड़थ्वाल ने अनेक दुष्प्राप्य, हस्तलिपियों का संग्रह किया था, जिनके अध्ययन के आधार पर उन्होंने नागार्जुन, चौरंगीनाथ, कणोरिपाव, स्वामी राघवानंद, सिद्धान्त पंचमात्रा, निरंजनी धारा, हिंदी कविता में योग प्रभाव, कबीर का जीवन वृत, कबीर के कुल का निर्णय आदि जटिल विषयों पर लेख लिखे। डॉ. बड़थ्वाल के सबसे महत्त्वपूर्ण लेख वे हैं जो हिंदी साहित्य के इतिहास की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हैं, तथा शृंखला को जोड़ने में सहायक होते हैं।"[4]

इसके अतिरिक्त उन्होंने 'राम चन्द्रिका', 'गोस्वामी' का अध्ययन तथा मनन करके उसे कृतित्व रूप में प्रतिफलित किया। योग प्रवाह (सं. डॉ. सम्पूर्णानन्द), मकरंद (सं. डॉ. भगीरथ मिश्र) तथा डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध (सं. डॉ. गोविन्द चातक) आदि निबन्ध संग्रहों में उनके निबन्धकार रूप को देखा जा सकता है। इनमें उनके सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार होने की छाप स्पष्टतः देखी जा सकती है।

हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी उन्होंने अच्छे साहित्यिक निबन्ध लिखे, जिनमें से 'मिस्टिसिज्म इन हिंदी पोयट्री' और 'मिस्टिसिज्म इन कबीर' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डॉ. बड़थ्वाल की 'अम्बर' उपनाम से कुछ कहानियाँ और कविताएँ भी तत्कालीन समय में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई।

'प्राणायाम', 'विज्ञान और कला', 'ध्यान से आत्मचिकित्सा' जैसी पुस्तकें भी उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा और योग प्रणाली के व्यावहारिक प्रयोग के बाद लिखी। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने अनेक निबन्ध लिखे जिनकी संख्या 70 के लगभग हैं। यह सभी निबन्ध शोधपरक हैं।

डॉ. बड़थ्वाल ने विचारात्मक तथा मनोविश्लेषात्मक निबन्ध लिखे। "इन सभी निबन्धों में शोध–परक दृष्टि है। इन निबन्धों में उनके दार्शनिक व्यक्तित्व की छाप अंकित है। अनुसंधान का व्यावहारिक रूप यदि देखना हो तो ये निबन्ध आदर्श हैं, इनमें प्रौढ़ मस्तिष्क और प्रौढ़ विवेचना शैली दिखाई देती है, जो हिन्दी के निबन्धकारों में कम ही देखने को मिलती है।"[5]

डॉ. बड़थ्वाल के कुछ श्रेष्ठ निबन्धों का अवलोकन करके ही उनकी शोध–क्षमता एवं शोध–दिशा का अनुमान सहजता से लगाया जा सकता है। उनके श्रेष्ठ निबन्धों में कबीर और कबीर पंथ, कबीर और गांधी, संत, सुरति–निरति, सन्तों को सहज ज्ञान, हिन्दुत्व का उन्नायक नानम, हिंदी काव्य में योग–प्रवाह, मीरा बाई और बल्लभाचार्य, उत्तराखण्ड में सन्त मत और सनत साहित्य, हिंदी साहित्य में उपासना का स्वरूप, हिंदी काव्य में रहस्यवाद, केशवदास और उनकी राम चन्द्रिका, पद्मावत की कहानी और जायसी का अध्यात्मवाद, हमारी संस्कृति तथा सन्देह आदि उल्लेखनीय तथा महत्वपूर्ण है।

**कबीर और कबीर पंथ** निबन्ध में कबीर को ज्ञान मार्गीय शाखा का प्रतिनिधि कहा है। कबीर में प्रेम भाव की भी न्यूनता नहीं है। डॉ. बड़थ्वाल की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं तथा सर्वथा नवीन मान्यता को स्थापित करने में सहायता करती है–

"उनके सर्वग्राही प्रेम से जीव–जन्तु और वनस्पति–जगत भी अछूता नहीं रहा है। कबीर उन लोगों की आलोचना करते हैं जो पत्तियां तोड़कर उन्हें देवार्पण करते हैं। उनके अनुसार मांसाहार राक्षसी गुणों का द्योतक है क्योंकि इससे शरीर के भले ही पुष्ट होता हो आत्मा अतृप्त ही रहेगी। पंडित के लिए कबीर कहते हैं कि उनके

देवज्ञान की सारे प्राणीमात्र को 'सियाराममय' देखने में होनी चाहिए और इस प्रकार उन्हें पशु बलि नहीं करती चाहिए। मुल्ला को फटकारते हुए यह कहते हैं कि "यदि तुम यह मानते हो कि सभी प्राणियों में एक ही ईश्वर व्याप्त है तो फिर पक्षियों को क्यों मारते हो?"[6]

**कबीर और गांधी** निबन्ध में डॉ. बड़थ्वाल न समता की अपेक्षा विषमता पर्याप्त निरूपित की है। यह उनकी सर्वथा नवीन खोज है। इस खोज के लिए लिखित प्रमाण एकत्र करने की डॉ. बड़थ्वाल ने अपनी प्रतिभा, कल्पनाशीलता एवं तार्किकता का आश्रय लिया। गांधी जी और कबीर में पर्याप्त भिन्नता का विश्वास जन–साधारण में व्याप्त है। गांधी जी राजनीतिज्ञ के रूप में तथा कबीर सन्त के रूप में प्रसिद्ध हैं। कबीर और गांधी दोनों की सबसे बड़ी विशेषता आध्यात्मिकता है जो उन्हें समान धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। कबीर में जिस परमतत्व को अनिर्वचनीय ज्योति अथवा प्रकाश कहा है। उसी परम तत्व तक पहुँचने का प्रयत्न गांधी जी जीवन भर करते रहे। कबीर अजपा जाप के रूप में साँस–साँस में राम जपने की बात करते हैं तो गांधी 'हरिबन्धु' के लेख में 'ब्रह्मचर्य' जागते और सोते दोनों समय राम–नाम का इकतारा बजाने की बात करते हैं। डॉ. बड़थ्वाल के अनुसार "गांधी की सबसे बड़ी विशेषता जो उन्हें कबीर के साथ ले जाकर रखती है, उनकी आध्यात्मिक प्रेरणा है। वे हमेशा उस परम तत्व तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकाश की उन्हें थोड़ी सी ही सही झलक अवश्य प्राप्त हो गयी थी। उसी परम ज्योति में अपनी जीवन–ज्योति को मिला देने का उन्होंने सफल प्रयत्न किया है, उनकी आत्मकथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है। उनके सब कामों में वही ज्योति जगमगा रही है। उस दुर्बल–से शरीर को लोक–कल्याण में प्रवृत्त होने की अनन्त शक्ति उसी ज्योति के दर्शन से प्राप्त हुई है।"[7]

**सन्त** शीर्षक से लिखित निबन्ध में उन्होंने सन्तों की व्याख्या एवं विशेषता पर सर्वथा मौलिक विचार किए हैं। डॉ. बड़थ्वाल के अनुसार कबीर आदि ज्ञानमार्गी ही सन्त नहीं थे सिद्ध और नाथ सन्त भी थे। सन्तों के अनेक उपदेशों को उद्धृत करने के साथ ही उन्होंने सन्तों की एकता और समानता स्थापित की है। सन्तों में नम्रता, दया एवं प्रेमभाव होने के कारण को रेखांकित करते हुए डॉ. बड़थ्वाल ने मौलिक कथन इस प्रकार दिया है– "वह नम्रता और सर्वभूत दया और प्रेम में ही वास्तविक आत्म–सम्मान देखता है। आत्मानुभूति के साथ वर्ग के लिए जगह नहीं है। जब कोई 'दूसरा' है नहीं तब किसके सामने गर्व करे किसको नीचा दिखावे। जो 'दूसरा' है वह भी मैं ही हूँ। अपनी परमानुभूति के अनन्तर सन्त के जीवित रहने का एकमात्र ध्येय उस अनुभूति को दूसरों तक पहुँचाता है। 'सोऽहं' की अनुभूति को वह 'तत्त्वमसि' के संदेश के रूप में सत्पात्रों के लाभ के लिए प्रचारित करना चाहता है।"[8]

**सुरति–निरति** शब्द सन्त साहित्य में और धार्मिक साहित्य में पर्याप्त प्रचलित है। सगुण, निर्गुण उपासकों भक्तों और योगियों ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है। डॉ. बड़थ्वाल ने सुरति और निरति व्युत्पत्ति तथा विशद अर्थ को स्पष्ट करने के पश्चात् दोनों की सत्ता को ही परमार्थ अध्यात्म भक्ति और योग–साधना की सफलता स्वीकार करते हुए लिखा है कि– "उसका सारा अस्तित्व उसकी प्रत्येक सांस स्मरण का प्रतिरूप हो जाती है। जिव्हा से राम–राम कहने से लेखक अजपा–जाप तक सब स्मरण ही और सुरति की उल्टी धार है। अन्त में यह अवस्था आती है जिसमें सुष्ठु रति निःशेष या या निरतिशय रति हो जाती है। सुरति इतनी पूर्ण हो जाती है कि वह स्मृति रूप में नहीं तदात्म–रूप से हो जाता है। वह अवस्था 'निरति' कहलाती है। यही वास्तविक ज्ञान की अवस्था है जो सच्चे साधक की उत्सर्पिणी प्रार्थना है। उसमें माया का सर्वथा त्याग और आत्मतत्व का पूर्ण प्रतिष्ठापन हो जाता

है। काल के चंगुल से छूटकर जीव स्वयं परमात्मा हो जाता है, और आध्यात्मिक आनन्द में निमग्न होकर नाचने लगता है। यह सुरति की निरति दशा है। 'निरति' शब्द नृत्य का परिवर्तित रूप है और ब्रह्मानन्द का द्योतक है।"[9]

**सन्तों का सहज ज्ञान** निबन्ध में डॉ. बड़थ्वाल का मानना है कि सन्तों में साक्षर और निरक्षर दोनों के व्यक्ति मिल सकते हैं। सन्तों ने लौकिक ज्ञान की अवहेलना की है। पराविद्या अध्यात्म से और अपरा लोक से संबंधित है। कबीर ने पोथी पढ़–पढ़कर मरने वालों की अपेक्षा प्रेम के ढाई अक्षर पढ़ने वाले का पण्डित बताया है 'कबीर के तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी' को चिन्तक कबीर की गर्वोक्ति स्वीकार करते हैं। परन्तु डॉ. बड़थ्वाल ने उनके सहज ज्ञान पर प्रकाश डालते हुए लिखा है। "बुद्धि और तर्क के क्षेत्र को नीचे छोड़कर निर्गुणी सन्त भी अनुभूति के इसी राज्य में प्रविष्ट होने का दावा करता है, जहाँ उसे एकमात्र परमसत्ता का साक्षात्कार होता है। यदि टेनिसन की एक पंक्ति को उद्धत करें तो कह सकते हैं– स्थिर सूक्ष्म गम्भीर सत्तत्वों की उसे संवेदना हुई होती है। बिना इस अनुभूति–ज्ञान के दर्शनशास्त्र एक विवादमात्र है। परन्तु जैसा सुन्दरदास ने कहा है कि– "जाके अनुभव ज्ञान, बाद में न ब्रह्यो है। दूसरों से सुन–सुन कर प्राप्त हुआ ज्ञान जिसके पीछे अनुभव का सहारा नहीं है, झूठा है। सार वस्तु है अनुभव, जो हमें तभी प्राप्त हो सकता है जब स्थूल बुद्धि से ऊपर उठकर अपरोक्षानुभूति के राज्य में हमारा प्रवेश हो। तभी हमें स्वानुभव से ज्ञात हो सकता है कि वस्तुतः हमारे ही भीतर ब्रह्म की सत्ता है। इसी अनुभव–ज्ञान को निर्गुणी सन्तों ने सहजज्ञान कहा है, जिसकी ऊँचाई तक चढ़ जाना आध्यात्मिक क्षेत्र में आवश्यक है।"[10]

**उत्तराखण्ड में सन्त मत और सन्त साहित्य** निबन्ध में डॉ. बड़थ्वाल मानते हैं कि 'साधक, योग और तपस्वी युग–युगान्तर से गढ़वाल की भूमि में आते रहे हैं और सिद्धि प्राप्त करके इस भूमि की महिमा बढ़ाते रहे हैं। आज भी गढ़वाल में सन्त साहित्य का असीम भण्डार है।' डॉ. बड़थ्वाल भी गढ़वाल में प्राप्त होने वाले पूरे सन्त साहित्य का उल्लेख नहीं कर सके हैं। गढ़वाल में बिखरे सम्पूर्ण सन्त साहित्य को प्राप्त करना ही असम्भव था, उसका अध्ययन करना और उल्लेख करना तो दूर की बात है। सन्त साहित्य सम्बन्धी जो सामग्री डॉ. बड़थ्वाल को सरलता से मिल सकी, उसी का उन्होंने अपने इस लेख में उल्लेख किया है।

यह विवेचन उनके इस मार्ग को प्रशस्त करता है जिस पर सामान्यतः किसी मनीषी ने चलने का प्रयास नहीं किया था। डॉ. बड़थ्वाल के निबन्धों में विषयान्तर का अभाव एवं कसावट का गुण सर्वत्र विद्यमान है। उन्होंने अपने निबन्धों में विचारों को क्रमबद्ध और सुसम्बद्ध रूप से प्रकट किया तथा विषयों अथवा तथ्यों का भली–भाँति प्रतिपादन भी किया है। विषय का सुष्ठु प्रतिपादन ही निबन्ध की श्रेष्ठता निश्चित करता है, क्योंकि निबन्ध का उद्देश्य ही विषय प्रतिपादन है। विषय को सरल, सहज और सुबोध रूप से प्रतिपादन की कला में बड़थ्वाल जी निष्णात है। डॉ. बड़थ्वाल के निबन्धों में विभिन्न भाषा शैलियों के दर्शन मिलते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल निबन्धकार के रूप में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनकी शैली विशिष्ट, विवेचन की स्पष्टता लिए हुए गम्भीर, तत्त्वदर्शी वैचारिकता सम्पन्न है। वस्तुतः उनकी प्रतिभा के पारस के संस्पर्श से निबन्ध विधा भी कंचन की भाँति दीप्त हो उठी।

## सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी के गद्यकार और उनकी शैलियाँ, श्री राज गोपाल चौहान, पृ.– 59

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, पृ.– 464
3. डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, सं.– डॉ. गोविन्द चातक, प्रस्तावना
4. डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, सम्पादक– डॉ. गोविन्द चातक
5. प्रतिनिधि हिंदी निबन्धकार, डॉ. हरि मोहन, पृ.– 82
6. डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, सं.– डॉ. गोविन्द चातक, पृ.– 15
7. डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, सं.– डॉ. गोविन्द चातक, पृ.– 19
8. डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, सं.– डॉ. गोविन्द चातक, पृ.– 36
9. डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, सं.– डॉ. गोविन्द चातक, पृ.– 44–45
10. डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, सं.– गोविन्द चातक, पृ.– 47


Copyright © 2015 Dr. Rakhee Upadhyay. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.